International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 403-404

सांप्रदायिक सौहार्द का संदेश और रेखाचित्र 'सुभान खाँ'

नरेश कुमार
हिन्दी प्रवक्ता, राजकीय मॉडल महाविद्यालय, 'महनपुर', जम्मू और कश्मीर, भारत।

प्रस्तावना

'सुभान खाँ' एक ऐसे रचनाकार की रचना है जिसने अपनी पढ़ाई छौड़ असहयोग आंदोलन में भाग लिया और अंग्रजी सरकार के विरोध में कई बार जेल गये। पत्रकार, संपादक, नाटककार, निबंधकार और उपन्यासकार का जीवन जीने वाले रामवृक्ष बेनी पुरी की अधिकांश रचनाएं भी जेल में ही रची गई हैं। पतितों के देश में, आम्रपाली, माटी की मूरतें, कैदी की पत्नी, चिता के फूल, सीता का मन संघमित्रा, गेहूं और गुलाब आदि रचनाओं से हिन्दी बेनी पुरी ने हिन्दी साहित्य को विशेष योगदान दिया है। उनकी रचनाओं का प्रमुख स्वर देश प्रेम, राष्ट्र एकता, क्रांतिकारी सोच आदि प्रवृत्तियों से ओतप्रोत हैं। 'सुभान खाँ' उनका एक महत्वपूर्ण रेखाचित्र है। जिसमें एक इमानदार, अमनपसंद, भाईचारे, सांप्रदायिक सौहार्द्र, मानवतावादी, कमठ आदि गुणों से संपन्न चरित्र के चित्र को सुभान के रूप में उकेरा गया है।

सांप्रदायिकता हमारे लोकतंत्र पर एक कोढ़ है जिसने हमेशा मानवता का नुक्सान किया है। यह आजादी के पहले और बाद से ही भारत के लिए एक बड़ी चुनौती रही है। दो समुदाय जब मानवता और लोकतंत्र के प्रमुख मुल्य 'धर्म निरपेक्षता' को भूल कर अपनी–अपनी झूठी श्रेष्ठता के मद में मार–काट पर उतर आते हैं तो इस स्थिति को सांप्रदायिकता का नाम दिया जाता है। सांप्रदायिकता एक ऐसी सोच है जो राष्ट्र की एकता को खंडित करने का काम करती है। यह सोच एकाएक पैदा नहीं हो जाती है। इसको हवा पानी राजनीति के संरक्षण में मिलता है। जिसके फलस्वरूप देश ने कई त्रास्दियाँ झेल ली हैं। वास्तव में आजादी के बाद नेताओं के लिए सांप्रदायिकता एक दुधारू पशु की भांति काम आ रही है जिसको जगह जगह दूह कर वह कुर्सी को हासिल करते आये हैं। शहीद भगत सिंह अपने एक आलेख' साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' सांप्रदायिकता के कारण प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि, ''जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे सांप्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दोस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली।''[1]

इसके आगे वह लिखते हैं कि, ''अखबारों का असली कर्त्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना सांप्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल–मिलाप बढ़ाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई–झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है।''[2] सांप्रदायिकता को लेकर भगत सिंह का यह विश्लेषण आजादी के पहले का है लेकिन पढ़ते हुए लगता है कि यह बात किसी ने आजदी के पहले नहीं इक्कीसवीं सदी में लिखी है। आज मीडिया और राजनेता भगत सिंह के विश्लेषण पर एकदम खरे उतर रहे हैं। दोनो उन्माद की राजनीति कर अपनी– अपनी रोटियाँ सेंक रहे हैं। दोनों विकास और राष्ट्रवाद के चमकदार कवरों में सांप्रदायिकता की ज़हरीली टॉफियाँ बांट कर एक दूसरे के हितों को साधते नज़र आ रहे हैं। पिछले कुछ सालों में वर्ग विशेष के लोगों को संदेह भरी नज़र से देखने का प्रचलन पैदा किया जा रहा है। धर्म के नाम पर हत्याएँ बढ़ी हैं। सवाल यह बन चुका है कि इससे निजात कैसे पाई जाए डॉ. अमरनाथ अपनी किताब 'हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दाबली' में लिखते है, ''विचारधारा से विचारधाराओं के स्तर पर ही पार पाया जा सकता है। सांप्रदायिक हिंसा और इसके प्रचार को सिर्फ सरकार यानी राज्य ही रोक सकता है, मगर सांप्रदायिकता उन्मूलन सिर्फ राज्य का काम नहीं है बल्कि यह सभी राजनीतिक दलों, बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों, लेखकों कलाकारों, पत्रकारों और अध्यापकों का काम है''[3]

इनमें से कौन अपनी जिम्मदारी से चूक गया है कौन यह भी एक विचारणीय सवाल है। लेखक तो मानवता का संदेश आदिकाल से ही देते आ रहे हैं। सांप्रदायिकता और मानववाद कबीर के साहित्य से ही केन्द्र में आ जाते हैं। उकनी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले लेखक आज तक इस ज़िम्मेदारी को तमाम धमकियां खा कर भी निभा रहे है। यह प्रेरण कबीर से शुरू होती है कि मानवता के मर्म को जानो उनका एक दोहा देखें–

'हिन्दू कहत है राम हमारा, मुस्लमान रहमाना।
आपस में दोऊ लरै मरतु हैं, मरम कोई नहीं जाना।।'

लेकिन जिसने यह मर्म पा लिया है वह हमेशा सांप्रदायिकता के विरोध में उतरा है उसने समाज को प्ररेरित करने के लिए हमेशा ऐसे चरित्र गढ़े हैं। जो सांप्रदायिक सद्भाव का संदेश देते हैं। अनेकता में एकता ही भारत को भारत बनाती है। जनता आपस में सौहर्द्र के साथ भली भांति जानती है। वह दीपावली और ईद को मिलकर मनाना जानती है। एक दूसरे के दुखों में शरीक होना जानती है। हिंदू दरगाहों पर माथे टेकते हैं तो मुस्लिम कलाकार देवी देवताओं की भेटे गाते हैं। लोग एक–दूसरे मेल–मिलाप से रहना जानते है। सुभान खाँ रेखाचित्र में देख सकते। लेखक के शब्दों में, ''ईद– बकरीद को न सुभानदादा हमें भूल सकते थे, न होली– दीवाली को हम उन्हें ! होली के दिन नानी पने हाथों से पुए, खीर और गोश्त परोसकर सुभानदादा को खिलातीं।''[4] यही सही हिन्दोस्तान है जो अपने–अपने तीज– त्यौहारों में एक– दूसरे को कभी नहीं भूलता। लेखक कहता है, ''जिन कितने देवताओं की मनौती के बाद माँ ने मुझे प्राप्त किया था, उनमें एक हुसैन सहाब भी थे।''[5] यही भारतीय जनता की सही तस्वीर है। जिसको समझना बहुत ज़रूरी है। हिन्दोस्तान की जनता है जो इस नारे पर जीना जानती है कि हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई हम सब हैं भाई–भाई। इस भाईचारे के महत्व को वह अच्छे से समझती है तभी तो एक मुस्लिम राज मिस्त्री लेखक के मामा जी का मंदिर बनाता है और जब एक मुस्लिम मस्जिद बनाता है तो तमाम लकड़ी लेखक के मामा के बगीचे से जाती है। मस्जिद तैयार होने पर सब

हिन्दू–मस्लिम उद्घाटन समारोह में बुलाये गये सबके लिए अपने–अपने मजहब के हिसाब से मुंह मीठा करवाया गया।, ''जिस दिन मस्जिद तैयार हुई थी, सुभानदादा ने जवारभर के प्रतिष्ठित लोगों को न्योता दिया था। जुमा का दिन था। जितने मुसलमान थे, सबने उसमें नवाज पढ़ी थी। जितने हिन्दू आए थे, उनके सत्कार के लिए दादा ने हिन्दू हलवाई रखकर तरह–तरह की मिठाईयाँ बनवाई थी।''[6]

इतने सब भाईचारे के साथ जीने वाली हिन्दोस्तानी जनता कैसे कुछ चंद फूट डालो शासन करो की नीति अपना कर, धर्म की राजनीति करके दोनों के बीच कल्ह के बीज बो देते हैं और मीडिया उस आग में घी का काम करने लगती है। लेखक कहता है एक दौर बदलते ही लोग क्या से क्या हो गये।, ''शहर आए दिन हिन्दू–मुस्लिम दंगों के अखाड़े बन जाते थे। हां, आए दिन! देखिएगा, एक सड़क पर हिन्दू–मुसलमान चल रहे हैं, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे हैं। एक ही सवारियों पर जानू–ब–जानू आ–जा रहे हैं, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे हैं, एक ही दफ्तर में काम कर रहे हैं, कि अचानक सबके सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड़, मारपीट, खूनखराबी, आग–लगी– सारी खुराफतों की छूट! न घर महफूज़, न शरीर, न इज्जत! प्रेम, भाईचारे और सहृदयता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशंस हत्या का उल्लंग नृित्य!''[7]

यह किसी और नहीं इसी सांप्रदायिक शै का परिणाम था। जो फैलता – फैलता गांव तक फैल चुका है। लोग गाय और बाजों– गाजों के नाम पर गले काटने को उतारू हो चुके थे। ऐसे माहोल से कुछ पंडित और कुछ मुल्लाओं की चल बनी। धार्मिक कट्टरवाद शुरू हो गया दोनो समुदाय जो कल तक एक दूसरे के यहां आ–जा रहे थे एक दूसरे को संदेह भरी नज़रों से देखने लगे। एक दूसरे की धार्मिक आस्था का ध्यान रखने वाले अब एक दूसरे के धार्मिक प्रतीकों से छेड़छाड़ पर उतर आए और उसी मस्जिद में जिसके उद्घाटन में दोनों समुदायों ने मिलकर खुशियां मनाई थीं वही लाड़ई का अड्डा बन गया। वहां ही गाय की कुर्बानी की बात की जाने लगी। दोनों समुदाय एक दूसरे के लहू के प्यासे बन गये। पर सुभान खाँ जैसे मानवता हितैशी सच्चे मुसलमान और लेखक के मामा अमन पसंद और भाईचारे की रक्षा के लिए अंत तक डटे रहे। सुभानदादा जितना अपने धर्म की कद्र जानते थे उतनी ही दूसरों के धर्म की। वह कहते हैं कि मैं एक मुस्लमान हूँ, कभी अल्लाह को नहीं भूला हूँ। मैं मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मैं गाय की कुर्बानी नहीं होने दूंगा, न होने दूंगा। वह कहते है मेरे बुढ़ापे पर मत जाओ,'' मैं मस्जिद मैं चल रहा हूँ। पहले मेरी कुर्बानी हो लेगी, तब गाय की कुर्बानी हो सकेगी।''[8] यही है सांप्रदायिक सौहार्द्र। जिसके लिए मानवता के हितैशी अपनी जान की प्रवाह नहीं करते। और धार्मिक अंधता का विरोध करते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि सुभान खाँ रेखाचित्र आपसी मेल जोल की संस्कृति को बढ़ावा देती रचना है जिसमें सांप्रदायिकता के कारणों और सांप्रदायिकता के हल के सवाल पर गंभीर पड़ताल की गई है। ऐसी रचनाओं का आज एक अपना महत्व है। जो आज अपको इतिहास के नाम पर लड़ा रहे हैं उकने लिए वर्तमान के प्रसिद्ध शायर का शेर इस बात पर विचारणी है–

''सभी का खून है शामिल यहाँ की मिट्टी में
किसी के बाप का हिन्दोस्तान थोड़ी है''

जिन्होंने खून बहाए हैं मिलकर और फिर इस हिन्दोस्तान की एकता के महत्व अच्छे से समझते हैं। वह बांटने वालों को कह सकते हैं कि किसी के बाप का हिन्दोस्तान थोड़ी है।

संदर्भ

1. भगत सिंह, नौजवानों के नाम शहीदे– आज़म भगत सिंह का संदेश, गार्गी प्रकाशन, 2016, पृ. 14
2. वही
3. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, 2013, पृ. 368
4. गद्यफुलवारी, 2014, पृ. 92
5. वही, पृ. 92
6. वही, पृ. 94
7. वही, पृ. 94
8. वही, पृ. 96